ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
ISSN No.: 2347-2944, RNI:UPBIL04292, REG. No.: 561/2013-2014 Vol.-2, No.-2, **PP-164-167**,YEAR-2015

आचार्य रामानुज की शैक्षिक–दार्शनिक विचारधारा

❑ **शैलेश कुमार राय**

सारांश– *भारतीय शिक्षा का इतिहास बताता है कि भारत सदैव से ही विश्व गुरु के पद पर आसीन रहा है। जब विश्व के अन्य देशों में बर्बरता एवं असभ्यता विद्यमान थी तब भारत जगतगुरु पद पर आसीन होकर विशाल वैदिक सभ्यता एवं साहित्य का निर्माण कर रहा था। कालान्तर में इस धरा पर अनेक विदेशी आक्रमण हुए और देश की शैक्षिक ढाँचा को प्रभावित किये। फलस्वरूप अनेक शैक्षिक समस्याएँ उत्पन्न हुई। इन शैक्षिक समस्याओं के समाधान व प्राचीन शैक्षिक व्यवस्था की पुनर्स्थापना हेतु ऋशि–मुनियों, शिक्षाविदों, संत–महात्माओं के विचारों का अनुशीलन आवश्यक है। इसी सन्त–महात्माओं–आचार्यों की परम्परा में आचार्य रामानुज हुए, जिन्होंने भारतीय दर्शन को प्रभावित किया। इनका जन्म 1017 में भूतपुरी (दक्षिण भारत) में हुआ। वेदान्त दर्शन के आदि प्रवर्तक शंकराचार्य के पश्चात और इस दर्शन की पुनर्व्याख्या स्वरूप श्री रामानुजाचार्य द्वारा विशिष्टाद्वैत का प्रादुर्भाव हुआ। श्री रामानुजाचार्य ने इस दर्शन में जीवन के सैद्धान्तिक पक्ष के साथ ही व्यावहारिक पक्ष की भी चर्चा–उल्लेख किया, जिसकी जीवन के मन्जुलमय सामंजस्य के लिए अनिवार्य आवश्यकता है।*

धर्म, शिक्षा, न्याय, सभ्यता, विज्ञान, कला आदि मानव जीवन की आवश्यक प्रवृत्तियों की जन्मभूमि यह भारत भूमि है। पशु को मनुष्य बनाने की सभ्यता व संस्कृति का उद्भव यही हुआ। भारतीय सभ्यता मानवता की, समस्त मनुष्य जाति की अत्यन्त ही विवेक एवं दूरदर्शिता से भरी हुई जीवन–पद्धति है। इसे अपनाकर मनुष्य अगणित विकृतियों और बुराइयों से बचकर सुख, समृद्धि, सफलता और सद्गति का अधिकारी बनता है। इसमें अन्धविश्वास या मूढ़ परम्परा के लिए रत्तीभर भी स्थान नहीं है। यह देश स्वर्ग की अपेक्षा भी श्रेष्ठ समझा जाता था। अतीत का इतिहास इस तथ्य को मुक्त कण्ठ से उद्घोष कर रहा है।

विशिष्टाद्वैत दर्षन– आचार्य रामानुज का विशिष्टा द्वैत दर्शन वेदान्त दर्शन पर आधारित है जो सीधे वैदिक ग्रन्थों को प्रमाण स्वरूप ग्रहण करता है। यह भक्तिवादी दर्शन है। आचार्य शंकर से लगभग 250 वर्ष बाद आर्विभूत आचार्य रामानुज ने शंकर की भांति ब्रह्म को मात्र पारमार्थिक सत्य एवं जीव जगत को मिथ्या न घोषित किया, बल्कि जीव–जगत को ब्रह्मा का विशेषण बतलाते हुए उसकी एकता का निर्धारण किया है। विशिष्टाद्वैत में ब्रह्म अद्वितीय एवं विशिष्ट पदार्थ है तथा जीवन एवं प्रकृति उसके विशेष तत्व हैं। इस विशिष्ट रूप में ब्रह्म ही प्रधानतत्व है।

श्री रामानुज की शैक्षिक विचारधारा –वर्तमान परिप्रेक्ष्य में रामानुजाचार्य के इस विचारों का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि आज भी शिक्षा के इस आशय में कोई अन्तर नही आया है। किन्तु साम्प्रतिक शिक्षा में यह केवल सिद्धान्त रूप में ही परिलक्षित होता है। व्यवहार में नहीं व्यवहार में जो शिक्षा बालक को दी जाती है यह न तो उनके आन्तरिक गुणों का विकास ही करती है और न ही उनमें विवेकबुद्धि उत्पन्न करके उन्हें मानवोचित गुणों से सम्पन्न ही करा पाती है। व्यवहार में आज की शिक्षा बालकों को मात्र कतिपय पुस्तकों की जानकारी भर करा देती है।

शिक्षा के उद्देश्य– श्री रामानुजाचार्य के अनुसार शिक्षा के अग्रांकित उद्देश्य निर्धारित किये जा सकते है; यथा–पुरूषार्थ चतुष्ट्य की प्राप्ति, ज्ञान–विज्ञान का आत्मीकरण, चितवृत्ति निरोध, सामाजिक कर्तव्यपालन

प्रवक्ता, नागरिक शास्त्र, श्री सिद्धेश्वर नाथ इण्टर कॉलेज, कोटवा नारायणपुर, बलिया, (उ0प्र0) भारत

की भावना का विकास, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विकास एवं निःश्रेयस् की प्राप्ति। आज हमारी शिक्षा केवल पुस्तकीय ज्ञान तथा रोजगारपरक शिक्षा प्रदान करने भर रह गयी हे और यही उसकी निःसारिता का कारण है। वास्तव में, शिक्षा वह मन्त्र है जिसके माध्यम से एक जाति या राष्ट्रविकास करता है, और अपनी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। आज, आवश्यकता इस बात की है कि वर्तमान शिक्षा फलक को थोड़ा विस्तृत किया जाय और उसे मात्र ज्ञानार्जन अथवा जीविकोपार्जन का साधन बनने से रोका जाये। पुरूषार्थ चतुश्टय (आध्यात्मिक शिक्षा) की प्राप्ति को एक तरह से रामानुजाचार्य की शिक्षा की प्रमुख उद्देश्य कहा जा सकता है।

सन्त शिक्षाविद् रामानुज ने चित्रवृत्ति निरोध के लिए एकाग्रमन होना आवश्यक बतलाया है और इसके लिए योगाभ्यास पर बल दिया है। आज का भारत, योगाभ्यास के सत् परिणामों से परिचित होने लगा है तभी आज यहाँ एक ओर योग केन्द्रों एवं विद्यालयों की स्थापना होने लगी है, वही पाठ्यक्रम में योग–शिक्षा को सम्मिलित करके इसकी दूरदर्शन के माध्यम से भी शिक्षा दी जा रही है।

श्री रामानुज ने जिस शिक्षा की धारणा का प्रतिपादन किया, उसमें सामाजिक कर्तव्यपालन की भावना का स्थान प्रमुख था। इस शिक्षा के माध्यम से बालकों में स्वार्थ रहित कर्मों की भावना का विकास किया जा सकता है।

शिक्षा–व्यवस्था –श्री रामानुज ने प्रायः वैदिक षिक्षा–प्रणाली को ही मान्यता दी है। उन्होंने अपनी दिग्विजय–यात्रा के दौरान 108 स्थानों (मध्य प्रदेश, केरल, उत्तर प्रदेश आदि) का भ्रमण किया और यहाँ पर छः सन्यस्थ एवं दो गृहस्थ मठों की स्थापना की। श्री रामानुज ने शिक्षण–सत्र श्रावण्य मास की पूर्णिमा तिथि से माना है। अध्ययनकाल में , छात्रों के लिए कृष्णपक्ष में वेदांग तथा शुक्ल पक्ष में वेदों के अध्ययन का समय निर्धारित किया गया। शिक्षा की समाप्ति पौष मास के उत्सर्जस समारोह से मानी गयी हैं श्री रामानुज ने शिक्षा की सामान्य अवधि 12 वर्ष तथा अधिकतम अवधि 48 वर्ष निर्धारित की। मठों मे प्रवेश प्राप्त करने के लिए 'उपनयन संस्कार' आवश्यक था। इसके अधिकारी मात्र ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य थे। इनके उपनयन की आयु क्रमशः 8, 11, एवं 12 वर्ष निर्धारित की गयी। स्त्रियों एवं शूद्रों की ज्ञान प्राप्ति के लिए शरणागति मार्ग का संकेत किया गया है।

श्री रामानुज के अनुसार शिक्षा–प्राप्ति के तीन साधन थे, यथा–आचार्य–परिचर्या पुष्कल धन प्रदान करना एवं किसी विद्या के बदले में दूसरी विद्यार्थी का आदान–प्रदान। श्री रामानुज ने बौद्धिक क्षमता के अनुसार स्नातकों की तीन श्रेणियाँ निर्धारित की हैं, यथा–व्रत स्नातक, विद्या स्नातक एवं उभय स्नातक। शिक्षा की समाप्ति समावर्तन संस्कार से होती थी। शिक्षा–केन्द्र (मठ अथवा गुरूकुल) की व्यवस्था की दृष्टि से शिक्षक और शिष्य के लिए आवश्यक पालनीय नियमों का भी उल्लेख मिलता है।

श्री रामानुजाचार्य ने प्रायः गुरूकुल–शिक्षा को मान्यता दी है। यद्यपि आज के युग में गुरूकुलीय शिक्षा में लौटा तो नहीं जा सकता, किन्तु इसके कतिपय गुणों यथा–शिक्षकों की स्नेहित छत्रछाया ब्रह्मचर्य के गुण–ज्ञान के प्रति निष्ठा आदि को अवश्य ग्रहण किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, श्री रामानुजाचार्य की शिक्षा व्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष उनके शिक्षक एवं शिष्य के कर्तव्यों का स्पष्ट रूप से निर्धारण का है।

पाठ्यक्रम नियोजन – सम्पूर्ण पाठ्यक्रम को दो–वर्गों में विभक्त किया जा सकता हैं व्यावहारिक एवं पारमार्थिक। इन्हें अपरा (लौकिक) एवं परा (निःश्रेयस) विद्या भी कहते है। श्री रामानुज की दृष्टि में इन दोनों विद्याओं का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि परा एवं अपरा, किसी भी प्रकार के विषय से अध्ययन प्रारम्भ करने पर अन्ततोगत्वा कारण– ब्रह्म तक पहुँचा जा सकता है।

श्री रामानुज के शिक्षा सम्बन्धी सिद्धान्त का सबसे मनोवैज्ञानिक पक्ष उसका पाठ्यक्रम है, जिसमें बाह्य रूचि वाले छात्रों के लिए लौकिक विषय एवं आभ्यन्तर रुचि वाले छात्रों के लिए आध्यात्मिक विषयों के माध्यम से शिक्षा देने का निर्धारण किया गया है। वर्तमान पाठ्यक्रम में भी व्यावहारिक विषयों के साथ–साथ

पारमार्थिक विषयों का जोड़ा जाना बालक के सम्यक् व्यक्ति के विकास की दृष्टि से आवश्यक प्रतीत होता है।

शिक्षण् विधि– शिक्षण–विधि के अन्तर्गत ज्ञान–प्राप्ति के तीन तत्वों यथा–ज्ञाता एवं प्रमातृ चैतन्य, ज्ञान की प्रक्रिया अथवा प्रमाण–चैतन्य एवं ज्ञेय पदार्थ, का निर्धारण किया गया है। इसके पांच स्रोत हैं –प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, अनुभव एवं तर्क। इनमें से यदि शब्द (आगम) स्रोत द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जाये तो उसके लिए अग्रांकित चार साधन (पद्धतियाँ) महत्वपूर्ण हैं– अध्ययन, श्रवण, मनन, एवं निदिघ्यासन।

श्री रामानुज द्वारा अपनाये गये ज्ञान–प्राप्ति के पांच स्रोतों में से प्रत्यक्ष स्रोत द्वारा बालकों को शब्द, प्रत्यय, प्रतीक आदि का निर्माण करना सिखलाया जा सकता है। शब्द स्रोत द्वारा किसी विषय का स्थायी ज्ञान देना समीचीन होगा। कला, साहित्य, संगीत आदि के माध्यम से आत्मानुभूतिपरक ज्ञान सहजता से अर्जित किया जा सकता है तथा तर्क विधि का प्रयोग विषयवस्तु को संदेहरहित बनाने के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है।

रामानुज ने जिन चार प्रकार की शिक्षण–पद्धतियों का निर्धारण किया है उनमें से अध्ययन एवं श्रवण के माध्यम से क्रमशः छात्रों में स्मृति, अवधान, एकाग्रता, उच्चारण एवं समझने की शक्ति आदि कुशलताओं को उत्पन्न किया जा सकता है। मनन से तर्क, न्याय एवं निर्णयशक्ति, निरीक्षण आदि गुणों को, एवं निदिध्या सन् से आत्मानुभूति, आत्मावलम्बन, आत्मानुशासन आदि योग्यताओं को उत्पन्न करके उनके नैतिक स्तर को ऊपर उठाया जा सकता है।

अनुशासन–पद्धति– श्री रामानुजाचार्य के मत में अनुशासन का तात्पर्य बालक पर बलात् थोपा गया शासन नहीं, अपितु स्वेच्छापूर्वक ग्रहण किया गया नियम है। दूसरे शब्दों में इसे स्वतन्त्रता का पूरक भी कह सकते हैं। बालक को अनुशासित रखने के लिए कुछ तत्व सहायक है। यथा– शिक्षा का उचित मार्गदर्शन, बालक का स्वतः ज्ञान, श्रोत स्मार्त वाक्य समर्थित वस्तुओं को धारण करना एवं उसके कर्मो का अनुसरण करना, तथा योगाभ्यास। इन्ही तत्वों का अवलम्बन कर बालक निरन्तर नैतिकता से पारिपूरित होते हैं। वर्तमान युग में भी शिक्षा को सन्मार्ग पर लाने के लिए स्तन्त्रता एवं संयम के मध्य उचित समन्वय स्थापित करना आवश्यक है।

शिष्य–संकल्पना– विषिश्टाद्वैती, बालक को ईश्वर का शाश्वत अवतार मानते हैं। अतएव, वे उनके स्वतन्त्र अस्तित्व, गरिमामय–व्यक्तित्व, इच्छा शक्ति एवं निर्णायक शक्ति में विश्वास रखते है। ईश्वर का अंश होने के कारण प्रत्येक जाति, वर्ण एवं धर्म के बालक एक सदृश हैं। शिष्यत्व को ग्रहण करने के लिए अपेक्षित योग्यताओं का भी उल्लेख किया गया है; यथा–आस्तिक होना, धर्मनिष्ठ होना, शीलगुण सम्पन्न होना, आचार्य–सेवा में निपुण होना एवं ब्रह्मचर्य आदि गुणों से युक्त होना। बालक का व्यक्तित्व गरिमामय एवं अद्वितीय हैं उसका स्वतंत्र अस्तित्व है और वह समष्टि से ऊपर है। सबका सम्मान है और सभी की स्वतंत्र इच्छा शक्ति है।

शिक्षा–संकल्पना की दृष्टि से, श्री रामानुजाचार्य ने जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में वे अत्यन्त व्यावहारिक, लोकोपयोगी एवं लोकतन्त्रीय शिक्षा के अनुरूप दिखलायी देते है।

शिक्षक–संकल्पना–शिक्षक के स्वरूप का निरूपण करते हुए श्री रामानुजाचार्य ने अध्यापकों के लिए ''स्थिर बुद्धि' अर्थात दृढ़ निश्चयी होना, निश्पाप, वेदज्ञ अर्थात् आचार–विचार से युक्त होना, सात्विक विचारों वाला होना, सुनिश्चित दिनचर्या वाला होना, राग–द्वेष रहित होना, जितेन्द्रिय होना, दीर्घबन्धु अर्थात् छात्रों को लौकिक एवं पारमार्थिक ज्ञान प्रदान कर उनके आत्मोत्थान में सहायक होना, तथा छात्र को अनुशासित करने में प्रवीण होना'' आदि आवश्यक गुणों का निर्धारण किया गया है। ये गुण, आज भी शिक्षकों के लिए ग्रहणीय हैं। शिक्षकों के व्यावसायिक प्रशिक्षण–कार्यक्रमों में इन गुणों की प्रशिक्षणावधि में विकास का प्रयास किया जा सकता है, साथ ही शिक्षकों के चयन में इन गुणों को आधार बनाया जा सकता हैं

विशिष्टाद्वैत दर्शन में शिक्षक–वर्ग के लिए जो सबसे महत्वपूर्ण बात कही गयी है, वह है प्रत्येक बालक के व्यक्तित्व का समादर। शिक्षक अपने

कर्तव्यों का सम्यक् रूप से निर्वाह तभी कर सकेगा जब कि वह प्रत्येक बालक को ईश्वर का रूप मानकर उसके व्यक्तित्व का समादर करें। वास्तव में, तभी वह प्रत्येक के व्यक्तित्व को उसकी अधिकतम सीमा तक उन्नत करने में सफल होगा।

मूल्यांकन–पद्धति– श्री रामानुज के अनुसार मूल्यांकन की प्रक्रिया को बौद्धिक स्तर के मापन के साथ ही शैक्षिक उद्देश्यों के साथ सम्बद्ध किया गया है, जिसके फलस्वरूप यह एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया के रूप में निरूपित है। मूल्यांकन के लिए प्रश्नोत्तर, वादविवाद, पर्यवेक्षण, एवं साक्षात्कार आदि विधियों का भी प्रयोग किया गया है।

श्री रामानुजाचार्य द्वारा दर्शायी गयी मूल्यांकन की सभी विधियाँ अत्यन्त उपयोगी हैं। वर्तमान युग में लिखित परीक्षा के साथ–साथ शिक्षक द्वारा उक्त विधियों का प्रयोग किया जाना चाहिये।

निष्कर्ष/अनुप्रयोग–सारतः कहा जा सकता है कि श्री रामानुजाचार्य के शिक्षा–विषयक विचार वेदान्त की ही पुनर्व्याख्या करते है और वेदान्त आत्मा के विकास पर बल देता है। वह मानता है कि प्रत्येक व्यक्ति ब्रह्म की अभिव्यक्ति है। यदि वेदान्त की इस मूल भावना को स्वीकार कर लिया जाये तो निश्चय ही व्यक्ति–व्यक्ति के मध्य भेद मिट जायेगा और विवाद का अस्तित्व ही न बचेगा। श्री रामानुज छात्रों के पाठ्यक्रम में लौकिक व आध्यात्मिक दोनों तत्वों के विकास पर बल देते है। श्री रामनुजााचार्य ने छात्रों के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने हेतु निदिध्यासन की बात करते हैं जो कि लोकतंत्रीय शिक्षा की माँग है। बालक का स्वतंत्र अस्तित्व है, उनकी इच्छा शक्ति की रक्षा होनी चाहिए। यह समष्टि से ऊपर है; इसमें किसी भी प्रकार का भेदभाव न हो ऐसी लोकतंत्रीय धारणा विशिष्टाद्वैत की है। इसमें योगाभ्यास पर बल दिया गया है। अनुशासनहीनता की समस्या के समाधान हेतु 'स्वतन्त्रता एवं संयम' पर बल दिया गया है। श्री रामानुज ने शिक्षकों के लिए 'दृढ़ निश्चयी, वेदज्ञ और सदाचारी–सुव्यवस्थित दिनचर्या वाला होने की बात कही। साथ ही साथ यह भी बताया कि वह छात्रों के विषय में जानने वाला, मनोवैज्ञानिक और उनकी सर्वांगीण विकास करने वाला हो, बताया हैं अध्ययन–अध्यापन में वाद–विवाद, तर्क, चिन्तन–मनन को महत्वपूर्ण माना है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि श्री रामानुजाचार्य शैक्षिक सिद्धान्स वर्तमान लोकतान्त्रिक भारत की शैक्षिक समस्याओं के निदान की दृष्टि से उपयोगी है। वर्तमान शैक्षिक प्रणाली में इसे लागूकर समस्याओं पर विजय पाया जा सकता है, साथ ही साथ शिक्षा की गुणवत्ता में भी सुधार किया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 एल0के0 ओडः शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि; राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी; जयपुर, 2005
2. डॉ0 रमनविहारी लालः शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, आर लाल बुक डिपों, मेरठ
3. डॉ0 गुप्ता एवं टण्डन :उदीयमान भारतीय समाज, में शिक्षक आलोक प्रकाशन, लखनऊ; 2010
4. डॉ0 रामशकल पाण्डेय :शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

*****